रामेश्वरम में विरोध के बीच महायज्ञ सम्पन्न

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 2 एवं अनेकों अन्य sources, ऑडियो/वीडियो

“रामेश्वरम में विरोध के बीच महायज्ञ सम्पन्न” शीर्षक से यह लघु पुस्तिका अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते समय हमें अपनी अयोग्यता का संकोच तो अवश्य है लेकिन जिस सदुद्देश्य से प्रकाशन हो रहा है अवश्य ही लोकहितकारी होगा। इसी विश्वास के आधार पर एक उत्साह और आशा की लहर हमारे अंदर कौंध रही है। पाठकों से निवेदन है कि प्रकाशन से पूर्व पुस्तिका को कई बार पढ़ा गया है लेकिन फिर भी अगर अनजाने में कोई त्रुटि रह गयी हो तो हमें सूचित करें ताकि हम तुरंत करेक्ट कर सकें।

यह लघु पुस्तिका का आधार मूल रूप से श्रद्धेय डॉक्टर प्रणव पंड्या और आदरणीय ज्योतिर्मय जी की पुस्तक "चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 2" है लेकिन अनेकों अन्य sources, ऑडियो/वीडियो आदि की सहयता ली गयी है ।

कन्याकुमारी में यज्ञ के लिए ज्वालादत्त का संकल्प

दक्षिण भारत में हुए यज्ञ आयोजनों में रामेश्वरम का कार्यक्रम बहुत बड़ा नहीं था मुश्किल से ढाई तीन हज़ार लोग आये होंगे लेकिन इसकी तैयारियों से लेकर संपन्न होने तक के संस्मरण एवं अनुभव इतने अधिक हैं कि उनका वर्णन किसी भी प्रकार से ignore नहीं किया जा सकता। कई पीढ़ियों से जोधपुर में रह रहे ज्वालादत्त मथुरा के पूर्णाहुति समारोह में आये थे। उन्होंने रामेश्वरम में पांच कुंडीय गायत्री महायज्ञ का संकल्प लिया था। संकल्प लेने से पहले आचार्यश्री ने पूछा, "रामेश्वरम में ब्राह्मणों और पंडों का बड़ा वर्चस्व है। उनमें बहुत से लकीर के फकीर हैं। वे अड़चन तो नहीं डालेंगे।" ज्वालादत्त इस बात का निश्चित उत्तर नहीं दे पाये थे। संशय में थे कि विरोध होगा या नहीं।

आचार्यश्री ने कहा, *“विरोध तो होगा ही क्योंकि वहां के पंडितों ने भगवान राम का भी विरोध किया था। सारा जगत जब रावण वध और लंका विजय के लिए भगवान की जय-जयकार कर रहा था तो रामेश्वरम के विद्वान उन्हें ब्रह्महत्या का दोषी बता रहे थे।”*

आचार्यश्री का आशय भगवान राम की वापसी के समय हुई एक घटना था ।

पुराण प्रसिद्ध है कि जब भगवान राम रावण का वध करके लौट रहे थे तो कुछ समय के लिए रामेश्वरम रुके। यहाँ के विद्वान पंडितों ने उनकी सराहना के बजाय उन्हें ब्रह्महत्या का दोषी बताया। इन पंडितों के अनुसार रावण एक विद्वान कर्मकांडी और तपस्वी ब्राह्मण था । उसमें यज्ञ, दान, तप और ज्ञान के चारों गुण थे, जो एक ब्राह्मण में होने चाहिए। युद्ध में ही सही, रावण

का वध अपराध ही था। रामेश्वरम के ब्राह्मणों ने इस पाप का प्रायश्चित भी बताया था। उस विधान के अनुसार प्रभु राम ने वहाँ शिवलिंग की स्थापना की। यह स्थापना भारत भर में स्थापित 12 ज्योतिर्लिंगों में एक गिनी जाती है। हमने अपने पाठकों की ज्ञानवृद्धि के लिए नीचे 12 ज्योतिर्लिंग के नाम तो दिए ही हैं, यह 12 गूगल links हैं जिन्हे क्लिक करके आप अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

1.सोमनाथ ज्योतिर्लिंग गुजरात,

2.नागेश्वर ज्योतिर्लिंग गुजरात,

3.भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र,

4.त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग नाशिक,

5.घृष्णेश्वर मन्दिर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र,

6. वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग, झारखंड,

7.केदारनाथ मंदिर केदारनाथ, उत्तराखण्ड,

8.श्री काशी विश्वनाथ मंदिर वाराणसी उत्तर प्रदेश,

9.ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग,मध्य प्रदेश,

10.महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग उज्जैन मध्य प्रदेश,

11.रामेश्वरम, तमिलनाडु,

12.मल्लिकार्जुन,आंध्रप्रदेश

रामेश्वरम में ज्योर्तिलिंगों की स्थापना वाले प्रसंग का ध्यान आते ही आचार्यश्री ने ज्वालादत्त से कहा, *"तुम्हारे मन में संकल्प का उदय हुआ है तो उसे पूरा करो। अगर कोई निंदा, भर्त्सना या पाप का आरोप लगता है तो उसका भी निवारण किया जाएगा।"*यह कह कर **आचार्यश्री ने ज्वालादत्त के हाथ में कलावा बांध दिया।**

आचार्यश्री का रामेश्वरम के लिए प्रस्थान

तिथियां तय हुईं 9 से 11 अक्टूबर 1956, आचार्यश्री निश्चित तिथियों से करीब दो माह पूर्व रामेश्वरम के लिए रवाना हुए। यात्रा का उद्देश्य वहाँ होने वाले आयोजन की तैयारी देखना और वातावरण को समझना था। उन दिनों मथुरा से रामेश्वरम के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं थे, केवल ग्रांड ट्रक एक्सप्रेस (जीटी) गाड़ी ही सहज थी। यह चेन्नई तक जाती थी और मथुरा से चेन्नई तक के लगभग 2000 किलोमीटर तय करने में गाड़ी 50 घंटे से अधिक समय लेती थी। 50 घंटे यानी दो दिन और तीन रात।

लगभग 20 वर्ष पूर्व, 1937 में आचार्यश्री ने इस क्षेत्र की यात्रा की थी। तब से अब तक स्थितियां काफी बदल गई हैं। उस समय वे अलग-अलग समय में महात्माओं से

मिलने या अरविंद आश्रम,रमण आश्रम, तिरुपति, कांची आदि तीर्थों में गये थे। उस समय की यात्रा किसी तलाश में थी। अरविंद आश्रम ,तिरुपति इत्यादि तीर्थों पर आधारित लेखों को पढ़ने के लिए पाठक हमारी वेबसाइट विजिट कर सकते हैं। अब उस क्षेत्र में किसी शुभारम्भ के लिए जाना था।

उस समय के पांच राज्यों मध्य भारत, सेंट्रल प्राविंस (सीपी) महाराष्ट्र और मद्रास की यह यात्रा मौसम और सहयात्रियों के लिहाज से हर मायने में परिवर्तनशील थी। चार छह घंटे के अंतराल से हालात बदलते रहने वाले थे। उस समय लकड़ी के फट्टों से बनी तीसरे दर्जे की सीटें ही हुआ करती थीं। यात्रियों की भीड़भाड़ भी तब ज्यादा नहीं होती थी। लंबी दूरी के यात्री तो बहुत ही कम होते थे।

मथुरा स्टेशन पर गाड़ी में सवार होने के बाद आचार्यश्री ने ऊपर की बर्थ पर एक चादर बिछा ली, सामान रखा और लेट गये। गाड़ी रात में करीब नौ बजे रवाना हुई थी। यह समय उनके विश्राम का होता था। यात्रा के लिए सामान कुछ खास नहीं था। तीन जोड़ी धोती कुर्ते अंतर्वस्त्र, कुछ पुस्तकें और सत्तू के अलावा भुना हुआ दलिया । बिस्तर के नाम पर एक दरी, चादर और तकिया। मौसम न अधिक गर्म या ठंडा ही था इसलिए ज्यादा वस्त्रों की जरूरत नहीं थी। रात आराम से कट गई। आचार्यश्री घर जैसी गाढ़ी नींद में सोये थे। रात में कौन किस स्टेशन से चढ़ा और कब उतरा कोई ध्यान नहीं था। जिस लोहे के बक्से में कपड़े थे, वह सिरहाने रखा था, सुबह उठे तब गाड़ी भोपाल स्टेशन पर ठहरी हुई थी।

आचार्यश्री और भिक्षु धर्मकीर्ति की दिव्य वार्ता

हमारा सौभाग्य है कि गुरुदेव और बौद्ध भिक्षु के बीच हो रहे संवाद जानने का अवसर मिल गया। हम तो यही कहेंगें कि इंसान कहीं भी हों ज्ञान अर्जन और ज्ञानप्रसार का ही शुभकर्म करने का मार्ग ढूढ़ ही लेगा। आइए देखें क्या वार्ता हो रही है।

भोपाल में कुछ यात्री डिब्बे में चढ़े। उनमें एक बौद्ध भिक्षु भी था। पीले वस्त्र पहने उस भिक्षु के चेहरे पर ऐसी शांति की आभा चमक रही थी जैसे वह अभी ध्यान से उठकर आया हो। वह भिक्षु आचार्यश्री के पास ही बैठ गया। सामने सीट पर दो लोग पहले से बैठे थे। भिक्षु को अपनी सीट पर बैठने और संभलने में कुछ क्षण लगे। सामान जमा कर वह इत्मीनान से बैठ गया तो उसने आचार्यश्री की ओर देखा। दोनों की नजरें मिली और भिक्षु ने तत्क्षण उन्हें हाथ जोड़कर झुककर

नमस्कार किया। प्रणत श्रद्धा में किये गये इस नमस्कार का उत्तर आचार्यश्री ने भी झुककर दिया और बोले

“मैं श्रीराम शर्मा हूँ। मथुरा का निवासी और कर्म से पुरोहित।”

भिक्षु ने कहा,

“मैं भिक्षु धर्मकीर्ति भगवान बुद्ध के बताये मार्ग पर चलने की कोशिश कर रहा हूँ। अपना कोई निश्चित ठिकाना नहीं है। बुद्ध ने कहा था कि चलते रहो। भिक्षु को भी चलते रहना चाहिए।

आचार्यश्री ने कहा,

“लेकिन बौद्ध धर्म में तो मठों, संघारामों और बिहारों की भरमार है, चलते रहने का संदेश कम ही भिक्षु ग्रहण कर पाते हैं। सभी धर्मों और साधन परंपराओं में समय और स्थिति के अनुसार संशोधन सामंजस्य की गुंजाइश

रहती है। भगवान बुद्ध ने भी किसी भिक्षु को एक जगह ज्यादा देर न रुकने का निर्देश दिया था। आचार्य शंकर (आदि शंकराचार्य) ने भी संन्यासी को एक गांव दूसरा सूर्योदय देखने से मना किया था लेकिन परंपराओं में तत्काल या कुछ समय बाद बिहार और आश्रम बनाने की व्यवस्था करनी पड़ी।"

बिहार, आश्रम, संघाराम ,मठ आदि सब निवास-प्रवास आदि के ही प्रकार हैं।

आचार्यश्री की बात सुनकर भिक्षु ने कहा, *"मैंने आपका पूर्व पक्ष भी समझा और उत्तर पक्ष भी, मैं आपकी विद्या और मेधा को प्रणाम करता हूँ । मुझे लगता है कि आप श्री रामेश्वरम जा रहे हैं। मुझे भी वहां तक जाना है। वहाँ से सिंहल द्वीप (वर्तमान श्रीलंका) जाऊंगा।"*

भिक्षु धर्मकीर्ति ने अपने मूल निवास और पूर्व जीवन के बारे में कुछ नहीं बताया था। वह सांची, मध्य प्रदेश से

आ रहा था। सांची जहां सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी और उसके बाद भारत भर में स्तूपों की स्थापना का अभियान चलाया। देश भर में बनवाये 84000 स्तूपों में 8 सांची में ही थे। उनमें से तीन स्तूप ही टूटी फूटी हालत में बचे हैं। धर्मकीर्ति और आचार्यश्री में सांची की चर्चा छिड़ गई।

भिक्षु ने पूछा,*आप कभी सांची गये है?"*

आचार्यश्री ने कहा,

"हाँ, 20-22 वर्ष पहले गया था लेकिन एक दिन ही रुक पाया। मुझे लगा कि सांची को समझने के लिए एक दिन कम है। कम से कम 5-7 दिन रुकना चाहिए , हो सके तो इससे भी ज्यादा।"

भिक्षु ने कहा,

“पांच सात वर्ष रुकें तो भी कम होगा। सांची चमत्कारों से परिपूर्ण तीर्थ है। वह भगवान बुद्ध के लिए समर्पित है लेकिन वहां उन की कोई मूर्ति नहीं है। सिर्फ प्रतीकों से ही बुद्ध की जीवन गाथा समझाई गई है। सांची का विशाल स्तूप वहां का मुख्य आकर्षण है। 16 मीटर ऊंचे और 37 मीटर व्यास वाले इस भव्य और विराट स्तूप का निर्धारण अशोक के समय से शुरु हुआ था। अशोक उसे पूरा नहीं करा पाए। उसके बाद पाटलिपुत्र के सिहासन पर बैठे उनके उत्तराधिकारी ने इसे पूरा कराया। पता नहीं भगवान बुद्ध के संदेश को विश्वभर में फैला देने वाले सम्राट अशोक से क्या चूक हुई होगी कि वे प्रतिमा स्थापित करना ही भूल गए”

आचार्यश्री ने कहा,

“यह चूक नहीं, विशेष सावधानी थी। ध्यान के गहन तल को छू लेने वाले सिद्ध साधक ही इस तरह की

व्यवस्था कर सकते थे। जिन सिद्ध साधकों ने स्तूप का स्वरूप निश्चित किया उन्होंने अनुभव किया होगा कि प्रतिमा तो एक तरह के लोगों को ही अपने भीतर की यात्रा करा सकेगी। यहां आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की चेतना के स्तर भिन्न-भिन्न होंगे। उन्हें आगे की यात्रा के लिए प्रेरित करने वाले बिंब भी अलग अलग होने चाहिए। एक ही तत्व या बिंब सबके लिए उपयोगी नहीं हो सकता। इसलिए सांची के स्तूप में अलग-अलग प्रतीक अपनाये गये।"

आचार्यश्री के मानस पटल पर 20 वर्ष पहले की गई यात्रा की छाया (images) उभर कर आ रही थी । उन images में कमल, पीपल, गाय और चक्र के माध्यम से बुद्ध के जन्म, ज्ञान प्राप्ति और धर्मोपदेश के दृश्यों को दर्शाया गया था। एक जगह पैरों की छाप अंकित थी। वह बुद्ध के निर्वाण का संकेत था ।

स्तूप की संक्षिप्त जानकारी

इन images की याद आते ही आचार्यश्री को लगा कि भगवान बुद्ध अपना पंचभौतिक शरीर छोड़कर जा रहे हैं। ज्योति बुझ रही है और उसके स्थान पर एक नई दीपशिखा का उदय हो रहा है। स्तूप में प्रवेश के लिए चार तोरण द्वार हैं। पश्चिमी द्वार पर बुद्ध के पिछले सात जन्मों की कथा है। कहीं वृक्ष में बुद्ध की झलक दिखती है तो कभी अश्व में । यहाँ दर्शाये गये images में बुद्ध को दैत्यगण तरह-तरह से प्रलोभन दे रहे हैं। उन प्रलोभनों को ठुकराये जाते हुए दिखाया गया है। दक्षिण द्वार पर खंचित पत्थरों में बुद्ध के जन्म की झांकी है। इसी द्वार के पास टूटी-फूटी अवस्था में सिंहमूर्ति भी है। सारनाथ में भी इसी तरह की मूर्ति है। भारत का राष्ट्रीय चिह्न इसी मूर्ति को बनाया गया है पूर्व द्वार पर राजकुमार गौतम और सिद्धार्थ को

ज्ञानप्राप्ति के दृश्य हैं। उत्तर में आम्रवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे हैं।

भिक्षु धर्मकीर्ति और आचार्यश्री में जो संवाद चल रहा था, उसका सार यह था कि इन चित्रों या दृश्यों को एकाग्रचित्त होकर देखने के बाद चेतना के तार झंकृत होते ही हैं। किसी के तार कमल को देखकर झंकृत हो जाएंगे तो किसी के पीपल को देख कर, पैरों की छाप देख कर भी किसी की चेतना में सोये हुए संस्कार जाग सकते हैं कि अंतर्यात्रा पर रवाना होना है। उत्तर दिशा में एक दृश्य है, उसमें भगवान बुद्ध आम्रवृक्ष के नीचे बैठे उपदेश दे रहे हैं। उनके चरणों से प्रकाश पुंज निकल

रहा है और सिर से जल की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है जैसे भगवान शंकर के माथे से गंगाजल प्रवाहित हो रहा है। पैरों से प्रकाश ऊर्जा और माथे से शीतलता का प्रवाह दर्शाता है कि अध्यात्म मार्ग में ऊर्जा की ऊष्मा के साथ शांति और शीतलता भी चाहिए।

इन चर्चाओं में पूरा दिन व्यतीत हो गया। रास्ते में कई यात्री आये और अपने गंतव्य स्टेशनों पर पहुँच कर उतरे होंगे। उनमें कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने संवाद में हिस्सा लिया। एक यात्री का प्रश्न था कि साधना के क्षेत्र में मार्गदर्शक की क्या आवश्यकता है, व्यक्ति प्रगति तो अपने ही प्रयत्नों से करता है।

आचार्यश्री ने कहा,

"मार्गदर्शक की भूमिका एक दीपक की तरह होती है। उसके प्रकाश में आगे की राह दिखाई देती है। वह अभिभावक और उपचारक की तरह भी होता है। अंगुली

पकड़कर चलना सिखाता है और औषधि अनुपान देकर निरोग बनाता है। तीनों ही स्थितियों में व्यक्ति को स्वयं ही चलना होता है।"

आचार्यश्री और भिक्षु धर्मकीर्ति के संवाद चल ही रहे थे कि विजयवाड़ा स्टेशनआ गया। शाम ही गयी थी, भिक्षु ने कहा अब ध्यान का समय हो गया है। करीब 40 मिनट बाद ध्यान पूरा हुआ तो भिक्षु ने कहा कि आज अद्भुत शांति का अनुभव हुआ।

रामेश्वरम में ज्वालादत्त स्टेशन पर रिसीव करने के लिए नहीं पहुँच पाये थे । वे तो काफी उत्साहित थे लेकिन आचार्यश्री ने ही मना कर दिया था। पता नहीं किस गाड़ी से आना हो। उस समय मद्रास (अब चेन्नई) से धनुष्कोटि तक दक्षिण रेलवे की एक ही गाड़ी आती थी। इस गाड़ी से जाने से बीच के एक स्टेशन पांबन पर उतरना होता था। कुछ गाड़ियां सीधे रामेश्वरम तक

भी जाती थीं लेकिन उनके चलने और पहुँचने का समय निर्धारित नहीं था। 1964 के cyclone के बाद धनुष्कोटि में आबादी बिल्कुल खत्म हो गयी है, आजकल यहाँ कोई नहीं रहता है। अगर हम यूट्यूब पर धनुष्कोटि सर्च करें तो अनेकों वीडियोस मिल जायेंगीं, इसी तरह का एक videolink हमने यहाँ दिया है जिसे आप क्लिक करके धनुष्कोटि के बारे में जान सकते हैं।

गाड़ियां तब भी लेट होती थीं इसलिए भी आचार्यश्री ने मनाकर दिया था। सामान ज्यादा नहीं था। एक हाथ में छोटा सा बक्सा और दरी चादर की गठरी बगल में दबाये वे सीतातीर्थ के पास ज्वालादत्त के निवास पर आ गये।

स्टेशन पर आचार्यश्री को कुछ पंडों ने घेरने की कोशिश की थी लेकिन बात बनी नहीं। आचार्यश्री की सादगी को देख कर उन्होंने सोचा कि कोई निर्धन साधक है और

समझा कि इस ब्राह्मण को यजमान बनाने से कुछ हासिल नहीं होगा। ज्वालादत्त ने बताया कि यहाँ **गायत्री महायज्ञ का विरोध है**। पंडे पुरोहितों ने अभियान सा छेड़ रखा है। विद्वान, शास्त्री और धर्माचार्य भी इसके विरोध में हैं। आचार्यश्री ने पूछा कि विरोध किस स्तर का है। ज्वालादत्त ने दो तीन घटनाएं सुनाई। धमकी भरे पत्र लिखने और चेतावनी देने जैसी बातें तो आम थी। ज्वालादत्त ने बताया कि आप पर हमला भी किया जा सकता है। तैयारी के दौरान अब तक सामान्य विरोध तो खूब देखा गया था। इस तरह का विरोध पहली बार अनुभव हो रहा था। एक स्थान पर पंडों ने प्रचारकों को घेर लिया और कहने लगे धर्मविरुद्ध बातें नहीं होने देंगे।

गायत्री मंत्र का उच्चारण सार्वजनिक रूप से नहीं किया जाना चाहिए। वह जिस तिस के कानों में नहीं पड़े।ज़ोर

से बोल कर किया गया जप शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन है। उनकी आपत्ति यह थी कि गायत्री मंत्र का उपदेश हर किसी को नहीं दिया जा सकता।

ज्वालादत्त ने पहले के विरोध की ये घटनाएं सुनाई तो आचार्यश्री ने कहा कि गायत्री माता परीक्षा ले रही हैं। हम लोग उसमें उत्तीर्ण भी हो रहे हैं। यहाँ का यज्ञ सफल होगा। उन्होंने इस समय की यात्रा को प्रचारित न करने के लिए कहा था। सिर्फ कार्यकर्त्ताओं से ही मिलना था और रामेश्वरम के तीर्थभाव को समझना था।

कहते हैं रामेश्वरम किसी समय ज़मीन से मिला हुआ था। प्रकृति में हुए उलटफेर के कारण अंतद्वीप का मध्य भाग दब गया और वहाँ समुद्र आ गया। अब वह करीब 18 किलोमीटर लम्बा और 11 किलोमीटर चौड़ा शंख आकर एक छोटा सा द्वीप है।

भगवान राम ने लंका पर आक्रमण के समय यहीं से एक सेतु बनाया था। समुद्र में तैरते पत्थरों से बने पुल पर अपार वानर सेना के उस पार जाने की घटना पुराण प्रसिद्ध है। उस पुल के अवशेष अब भी देखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में भी हमने NASA द्वारा बनाई गयी वीडियो का लिंक दिया है। यह वीडियो तो इंग्लिश में है लेकिन समझना बहुत ही आसान है, इसलिए इसे अवश्य देखें।

कहते है कि राम सेतु सौ योजन (करीब 1280 किलोमीटर) लंबा था। लंका विजय के बाद राम जब वापस लौटे तो उन्होंने धनुष की नोक से सेतु तोड़ दिया। जिस जगह सेतु तोड़ा वह तीर्थ धनुष्कोटि के नाम से विख्यात है। धनुष्कोटि या धनुष्कोडी में भारत के राष्ट्रपति स्वर्गीय APJ Abdul Kalam का बाल्यकाल

व्यतीत हुआ। उनका जन्म रामेश्वरम में हुआ था और उनके पिताजी हिन्दू साधकों को नाव से लेकर जाते थे।

रामेश्वरम से धनुष्कोटि करीब 23 किलोमीटर दूर है। इस तीर्थ में विभीषण,भगवान् राम की शरण में आये थे। जिस स्थान पर दोनों की भेंट हुई थी वहाँ विभीषण

का एक मंदिर भी है। 1964 के cyclone के बाद धनुष्कोटि पूरी तरह समाप्त हो गया था लेकिन विभीषण मंदिर को कोई क्षति नहीं हुई थी, इसी तरह की बात उत्तराखंड स्थित केदारनाथ मंदिर के बारे में भी कही जाती है। पाठकों से निवेदन है कि इन तथ्यों की पुष्टि के लिए स्वयं ही ऑनलाइन सर्च कर लें, हम गुरुदेव के साथ आगे बढ़ते हैं।

रामेश्वरम पहुँच कर आचार्यश्री ने कुछ देर विश्राम किया और ज्वालादत्त को साथ लेकर लक्ष्मणतीर्थ गये। रामेश्वरम मंदिर के लिए जाते हुए यह तीर्थ रास्ते में आता है। सड़क के दांई ओर विशाल सरोवर बना हुआ है। इस सरोवर का नाम लक्ष्मणकुण्ड है। चारों ओर पक्की सीढ़ियां और बीच में एक मंडप । आचार्यश्री कुछ देर के लिए सीढ़ियों पर बैठे। आचार्यश्री से नीचे वाली सीढ़ी पर ज्वालादत्त बैठ गये । आचार्यश्री सरोवर के जल को

निहार रहे थे। कुछ लोग सरोवर में स्नान कर उत्तर दिशा में बने शिवमंदिर की ओर जा रहे थे। कहते हैं कि इस मंदिर या यहां के शिवविग्रह की स्थापना लक्ष्मणजी ने की थी। वहाँ दर्शन कर निकलते हुए लोग पास ही बने मंडप में मुंडन आदि कराते और श्राद्ध तर्पण में लग जाते। वे श्राद्ध तर्पण के बाद लक्ष्मणेश्वर मंदिर का दर्शन करते थे।

रामलिंगम से अचानक भेंट

सीढ़ियों पर बैठे आचार्यश्री के सामने साउथ इंडिया स्टाइल धोती बांधे एक तमिल ब्राह्मण ने पूछा,

"मनुष्य तो एक स्वतंत्र इकाई है न। फिर उसे हर घड़ी अपने पूर्वजों को क्यों याद रखना चाहिए आचार्यश्री ?"

वह अचानक ही कहीं से आ गया था। आचार्यश्री के रामेश्वरम में आने का किसी को पता नहीं था। ज्वालादत्त और आचार्यश्री दोनों सोच रहे थे कि इस ब्राह्मण को किसने सूचना दी होगी। आचार्यश्री ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया,

"मनुष्य की स्वतंत्रता उसके अणु के रूप में है। सृष्टि के विराट परिवार और अपने पूर्वजों की परंपरा में ही वह स्वतंत्र है। एक परंपरा का अंग होने के नाते उसे अपने पूर्वजों का स्मरण करना ही चाहिए।"

उत्तर देने के बाद भी आचार्यश्री उस ब्राह्मण के बारे में सोच रहे थे कि कहां देखा होगा। उनके कौतूहल का समाधान साउथ इंडियन पंडित ने ही किया। वह बोला, "आश्चर्य मत करो। मैं आपसे करीब एक वर्ष पहले मथुरा में मिला था। तब आप वहाँ पूर्णाहुति महायज्ञ करा रहे थे। उस समय हम लोगों की बातचीत नहीं हो पाई थी।

तब भी मैं आपसे यही प्रश्न करना चाहता था।" गुरुदेव ने कहा "मैंने जो उत्तर दिया वह यथोचित है या नहीं?" रामलिंगम नामक ब्राह्मण बोला, "मैं तो मान लूंगा कि आपने सही उत्तर दिया है लेकिन यहाँ जो लोग आपका विरोध करने पर उतारू हैं, उनका समाधान कैसे करेंगे ?" गुरुदेव ने कहा कि मैं उनके सामने अपना पक्ष रखने की कोशिश करूंगा। रामलिंगम का कहना था कि अपना पक्ष रखने का लाभ तो तभी होगा न जब वे आपकी बात सुनने और समझने के लिए तैयार हों। उनका तो एकमात्र उद्देश्य है कि आपका यज्ञ किसी भी कीमत पर होने नहीं देना है।" आचार्यश्री ने कहा कि उन लोगों ने क्या तय किया है, वे जाने। हमने यज्ञ भगवान की साक्षी में संकल्प लिया है कि उनकी एक आराधना यहाँ भी करेंगे। देव और ऋषिसत्ताओं के सामने लिए गए संकल्प को अधूरा तो नहीं छोड़ा जा

सकता। आचार्यश्री के इस उत्तर पर रामलिंगम ने ताली बजाई। वह कहने लगा, “जो प्रश्न मैंने आरंभ में किया था वही गायत्री महायज्ञ से विरोध रखने वाले भी करते हैं। वे आपके किसी तर्क को स्वीकार नहीं करेंगे।” आचार्यश्री ने कहा,“ यह तो हमारे लिए और भी अच्छा है, हम उन्हें समझाने के फिज़ूल के श्रम से भी बच जायेंगे। इस पर रामलिंगम का कहना था कि वे यज्ञ करने से रोकेंगे अवश्य ही। आचार्यश्री ने कहा, “रोकते रहें, हम अपने संकल्प को पूरा करने से पीछे नहीं हटेंगे।”रामलिंगम ने कहा,”अगर वे लोग आपके जान-माल को नुकसान पहुँचाए तो भी अपना संकल्प नहीं बदलेंगे।” आचार्यश्री का उत्तर **“नहीं”** ही था। इस पर रामलिंगम ताली बजाकर झूम सा उठा उसने कहा, “तब तो मैं आपके साथ हूँ। *मैं केवल शास्त्र से ही नहीं शस्त्र से भी उनका मुकाबला कर सकता हूँ।* पलिलकोल पेरूयाल मंदिर के

पास एक अखाड़ा चलाता हूँ। 18 युवक रामदूत, हनुमान की साक्षी में बल की उपासना करते हैं। मुझे आप जैसे वीर पुरुष का साथ देने में गर्व का अनुभव होगा।”

ज्वालादत्त ने उस ब्राह्मण का परिचय और पता ठिकाना लिया। उसके बाद आचार्यश्री ने सरोवर में स्नान किया। कहते हैं कि लंका विजय से लौटकर भगवान श्रीराम ने पहले इसी सरोवर में स्नान किया था। रामेश्वरम की यात्रा करने वाले साधक भी मंदिर में दर्शन के लिए जाने से पहले यहाँ स्नान करते हैं।

ज्वालादत्त के साथ चलते हुए रामेश्वरम मंदिर के संबंध में प्रचलित जनश्रुतियों(legends) की चर्चा चल पड़ी। कुछ legends के अनुसार लंका विजय पर जाने से “पहले” भगवान राम ने यहाँ शिवलिंग की स्थापना की थी लेकिन कुछ लोग इसकी स्थापना लंका से आने के

बाद को कहते हैं। आचार्यश्री का कहना था कि दोनों उल्लेखों में भेद है लेकिन इससे ज़्यादा अंतर नहीं पड़ता। दोनों ही उल्लेख शिव और राम की उपासना में अभेद को दर्शाते हैं। विजय के बाद रामेश्वरम की स्थापना अधिक युक्तिसंगत है। युद्ध के बाद भगवान राम गंधमादन पर्वत तक आते हैं। उनका स्वागत करने के लिए वहां ऋषि मुनि इकट्ठे हुए हैं। उन्हीं में कुछ ऋषि रावण वध के लिए प्रभु राम की निंदा करते हैं। उनका कहना था कि रावण चाहे कितना ही दुराचारी हो, लेकिन था तो ब्राह्मण ही न। उसका वध नहीं किया जाना चाहिए था। उसे पकड़ लिया जाना चाहिए था, कारावास में बंदी बना लेते। वहीं पड़ा रहने देते। उसका वध करना अनुचित था।

"भगवान् राम पर ब्रह्महत्या का दोष लगा है। उसका प्रायश्चित किए बिना उनका कलुष नहीं मिटेगा।"

प्रायश्चित के रूप में शिवलिंग की स्थापना और पूजा अर्चना की व्यवस्था दी गई। शिवमूर्ति लाने के लिए हनुमान जी को कैलाश पर्वत भेजा गया। चर्चा करते-करते आचार्यश्री बोले देखो हनुमान जी को भगवान् शिव का अवतार माना गया है। हनुमान जी प्रभु राम की आराधना कर रहे हैं और प्रभु राम शिव की अर्चना के लिए उन्हीं के अवतार को कैलाश भेज रहे हैं।

"है न भक्ति की विभिन्न धाराओं का समन्वय !!"

थोड़ा रुककर आचार्यश्री कहते हैं,

"समन्वय ही मूल बात नहीं है। असल बात और है। भगवान् राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन्हें मर्यादा या परंपरा के साथ न्याय और औचित्य की स्थापना भी करनी थी। न्याय की प्रतिष्ठा के लिए रावण का वध किया और मर्यादा का निर्वाह करते हुए प्रायश्चित भी किया। नई परंपराओं की स्थापना का अधिकार उन्हीं

विभूतियों को है,जो पुरानी और प्रचलित परंपराओं का आदर करते हैं।”

यह सुनकर ज्वालदत्त ने पूछा कि क्या गायत्री महायज्ञ का विरोध करने वाले लोग भी किन्हीं परंपराओं का पालन करते हैं?आचार्यश्री ने कहा कि वे तो केवल *हठधर्मिता का पालन* ही कर रहे हैं। वरना गायत्री मंत्र पहले सभी का आराध्य उपास्य था। इसकी उपासना किये बिना कोई शास्त्र और साधना का आरंभ कर ही नहीं सकता था।

रामेश्वरम की विशेषता है कि यहां 22 जगह स्नान, आचमन आदि की व्यवस्था है। यात्री सभी तीर्थों में स्नान करते हैं। अपने साथ लोग रस्सी बाल्टी लेकर चलते हैं और हर तीर्थ से जल निकाल कर स्नान करते जाते हैं। मंदिर परिसर के बाहर भी दो तीर्थ हैं। उन सबके दर्शन करते हुए आचार्यश्री सभा मंडप के पास

पहुँचे। सभा मंडप के उत्तर में विश्वनाथ मंदिर है जहाँ हनुमान जी का लाया हुआ शिवलिंग स्थापित है। इसीलिए नाम हनुमदीश्वर है। कथा प्रसिद्ध है कि लंका से वापसी के समय भगवान श्रीराम ने यहां शिवलिंग की स्थापना और पूजा अर्चना का निश्चय किया । उस संकल्प को पूरा करने के लिए कैलाश पर्वत से विग्रह लाने का निश्चय हुआ। वहां से शिवलिंग लाने में देर हुई। सुबह होने लगी। इधर पूजा अर्चना का मुहूर्त निकला जा रहा था। मुहूर्त चूक नहीं जाए, इसके लिए बालू से शिवलिंग का निर्माण किया गया । उसमें प्राणप्रतिष्ठा और पूजा उपचार के कर्मकांड आरंभ हुए। यह प्रक्रिया आरंभ हुई ही थी कि हनुमान जी कैलाश से शिवलिंग लेकर आ गये। पूजा उपचार चलते तक उनके लाए हुए विग्रह को एक ओर स्थापित कर दिया गया। बाद में उस विग्रह में भी प्राण प्रतिष्ठा हुई। वह स्थापना विश्वनाथ

या हनुमदीश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है। लोगों का विश्वास है कि हनुमदीश्वर के दर्शन किए बिना रामेश्वरम मंदिर की पूजा सफल नहीं होती।
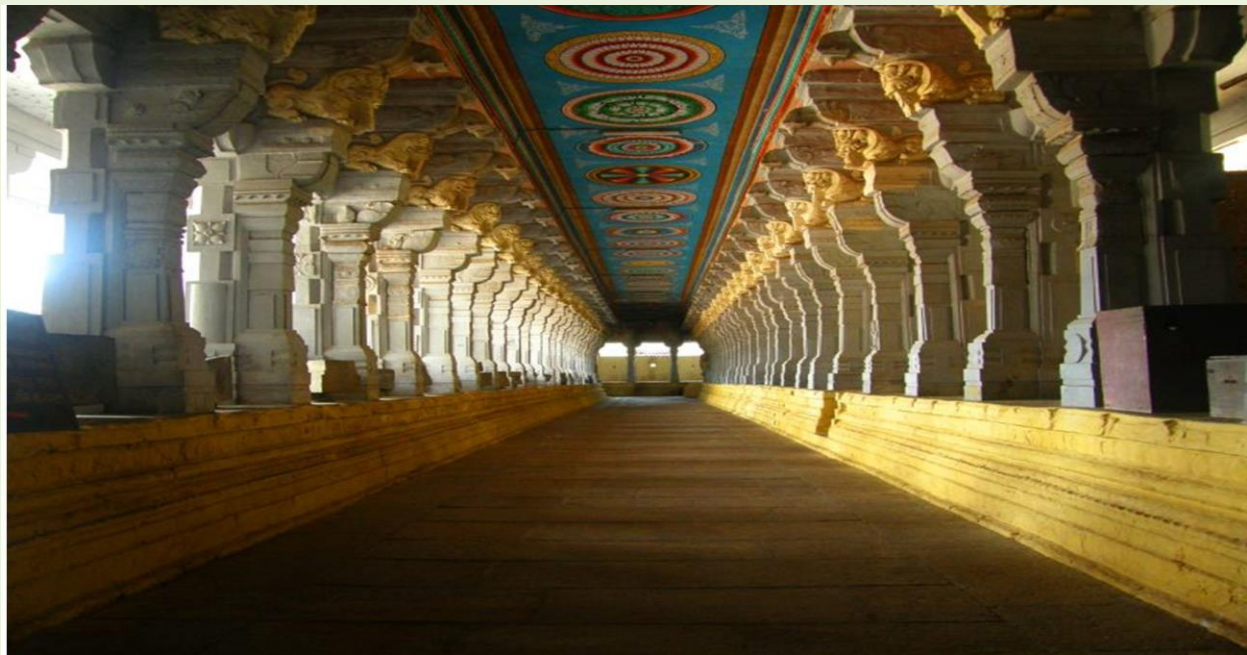
विश्वनाथ मंदिर से निकल कर आचार्यश्री मुख्य मंदिर की ओर गये । मंदिर के सामने छड़ों का घेरा लगा हुआ था ताकि दर्शन में किसी तरह की अव्यवस्था न हो। उस समय अधिक लोगों की भीड़ नहीं थी। तीन द्वार पार कर लोग आसानी से मंदिर के भीतर पहुंच रहे थे। आचार्यश्री छड़ों के घेरे के पास ही ठहर गये और मुख्य द्वार को गौर से देखने लगे। विख्यात है कि रामेश्वरम मंदिर में हरिद्वार से लाया गया गंगा जल ही चढ़ाया जाता है। यह भी प्रथा है कि शिवलिंग पर कोई व्यक्ति अपने हाथों से स्वयं जल नहीं चढ़ा सकता। उसे गंगाजल पुजारी को सौंप देना पड़ता है।

भगवान ने कुष्ठ रोगी को नहीं रोका

मंदिर के बाहर एक कुष्ठ रोगी घूम रहा था। वह अंदर जाना चाहता था लेकिन कुछ लोग उसे मना कर रहे थे। आचार्यश्री को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने हस्तक्षेप

करना चाहा। ज्वालादत्त ने रोका कि यहाँ लोग पहचान लेंगे तो यज्ञ में कठिनाई होगी। जो विरोध यज्ञ के समय होना है, वह बाधा अभी यहीं पर ही खड़ी हो जाएगी। आचार्यश्री ने ज्वालादत्त से कहा कि फिक्र न करो। पहचाने जाने का डर नहीं है और पहचान लिए गए तो भी कोई हर्ज़ नहीं है। आचार्यश्री ने कहा कि जिस देवस्थान की प्राणप्रतिष्ठा में रीछ वानरों ने भाग लिया था, क्या उसमें एक मनुष्य भाग नहीं ले सकता। भगवान क्या सोचते होंगे ? आचार्यश्री कुष्ठ रोगी को रोक रहे स्वयंसेवकों के पास गये और बोले,

"आप इन्हें क्यों रोकते हैं भैया। ऐसे लोगों को भगवान के घर में भी रोका जाएगा तो इनके लिए ठौर ठिकाना कहाँ होगा।"

'एक स्वयंसेवक ने कहा कि कुष्ठ रोग मनुष्य के अपने पापों का दंड है। यह संक्रामक रोग भी है, किसी और को नहीं लग जाए इसलिए भी रोका हुआ है।'

आचार्यश्री ने कहा कि आपकी पहली बात का उत्तर तो यह है कि अगर भगवान को ही रोकना होता तो वे इसके मन में दर्शन की इच्छा ही नहीं उठने देते। दूसरा उत्तर है कि कौन जानता है कि भगवान स्वयं ही इस रूप में न आये हो। आचार्यश्री ने कहा गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज का वह किस्सा तो आपने भी सुना होगा कि उनकी कथा सुनने के लिए एक कोढ़ी आया था, लोग उसे दुत्कार रहे थे। गोस्वामी जी ने उस कोढ़ी को पहचानते हुए कहा कि यह तो हनुमान जी हैं। उन्होंने प्रकट तो नहीं किया लेकिन श्रोताओं को मना कर दिया। वे तर्क करने लगे तो डपट दिया कि भगवान राम की कथा पतित पावन है यानि गिरे हुओं को,नीच

आदि लोगों को भी पावन कर देती है। इस पर सभी का अधिकार है। कोई पात्र कुपात्र नहीं है।

उत्तर भारत से आये धोती कुर्ता पहने ब्राह्मण को(हमारे परम पूज्य गुरुदेव को) स्वयंसेवकों ने ध्यान से सुना और कुष्ठ रोगी के सामने से हट गये।

हरिद्वार से लाए जल से ही अभिषेक

ज्वालादत्त से आचार्यश्री ने पूछा कि यहाँ हरिद्वार के गंगाजल से ही अभिषेक की परंपरा क्यों है, कहीं और जगह का जल क्यों नहीं लिया जाता ? ज्वालादत्त के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था और वह चुपचाप रहा। पीछे से किसी ने उत्तर दिया,

“हरिद्वार उत्तराखंड का प्रवेश द्वार है। उससे आगे का पूरा क्षेत्र भगवान शिव का है। गंगा भगवान विष्णु के पैरों से निकली है और शिव की जटा में समाई है। दोनों(

विष्णु और शिव) की भक्ति का सुंदर समन्वय हरिद्वार में अर्थात जहां से भगवान की लीलाभूमि आरंभ होती है वहीं से गंगाजल लेकर त्रिलोकीनाथ का अभिषेक होता है"

आवाज परिचित लगी। पीछे मुड़कर देखा तो वही कुष्ठ रोगी बोल रहा था जिसके लिए आचार्यश्री ने पैरवी की थी। गंगोत्री या गंगा के किसी और पड़ाव से लाए जल से भी अभिषेक होता है लेकिन जो महत्त्व हरिद्वार के गंगाजल का है, वह अन्यत्र से लाये जल का नहीं है।

हमारा समस्त प्रकाशन ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार के समर्पण और परम पूज्य गुरुदेव के मार्गदर्शन में हो रहा है। इस परिवार से जुड़े बहुत सारे सहकर्मी रामेश्वरम यात्रा का सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं और उन्होंने यूट्यूब पर कमेंट करके यहाँ दी गयी जानकारी में valuable additons की हैं। हमने भी जिज्ञासावश

यह जानने के लिए ऑनलाइन रिसर्च की कि हरिद्वार से लाये गए गंगाजल से अभिषेक करने की प्रथा आज भी प्रचलित है, तो हमें दिसंबर 2022 की यह वेबसाइट मिली जिसमें इस प्रथा का वर्णन है और आज भी प्रचलन है। पाठक इस वेबसाइट को विजिट करके बहुत सारी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान के दर्शन के लिए भी शुल्क

आचार्यश्री जहाँ खड़े थे वहाँ से भीतर का दृश्य साफ दिखाई दे रहा था। वे तन्मयता से देख रहे थे। लोग पुजारी के हाथों में गंगाजल और कुछ सिक्के रखते। बाद में पता चला कि दी जाने वाली रकम दो रुपए है। गंगाजल से अभिषेक करने वालों को यह शुल्क देना पड़ता है। माला और फूल आदि चढ़ाने का कोई शुल्क नहीं लिया जाता। गंगाजल अभिषेक के लिए दो रुपए की रकम उन दिनों कम नहीं थी। इतने पैसों में एक

मन (सैतीस किलोग्राम) अनाज आ जाता था। इस हिसाब से गंगाजल अभिषेक खर्चीला ही पड़ता था। दूध से अभिषेक करने के लिए डेढ़ रुपया, नारियल चढ़ाने के लिए चार आना (पच्चीस पैसे) अष्टोत्तरर्चन के लिए सवा पांच आना (इकतीस पैसे) और सहस्रार्चन के तीन रुपए दक्षिणा नियत थी। इसे शुल्क भी कहा जाता था। शुल्क इसलिए कि इस रकम को विग्रह पर अर्पित नहीं किया जाता। राशि मंदिर के कार्यालय में जमा कराना होती थी। वहां से रसीद दी जाती। उसके बाद पूजा अभिषेक की अनुमति दी जाती।

भगवान की पूजा के लिए भी पैसों की जरूरत होती है। जितनी ऊंची पूजा कराओ, उतने ज्यादा पैसे दो, कहता हुआ एक श्रद्धालु मंदिर से बाहर निकल रहा था। वह कुष्ठ रोगी अपनी जगह पर ही खड़ा हुआ था। उसने

यात्री की यह टिप्पणी सुन ली और स्वगत ही बोल उठा,

“जेब से जब तक कुछ रकम नहीं निकलती तब तक वस्तु का मूल्य पता ही नहीं चलता। आज पैसा ही सबसे मूल्यवान है। इसलिए दक्षिणा में वही चढ़ाया जाता है। किसी समय रक्त का मूल्य था। युद्ध में धन और साधनों से ज्यादा रक्त और बल का महत्त्व था तब लोग देवी देवताओं को रक्त चढ़ाते थे। वह बलि का (बलिदान) का युग था।”

कुष्ठ रोगी की यह बात सुनकर श्रद्धालु चौंका। आचार्यश्री और ज्वालादत्त भी इन बातों को सुन रहे थे। आचार्यश्री ने कहा, “तंत्र साधना के जमाने में लोग अन्यान्य कारणों से भी बलि देते थे। वह विद्या गुप्त थी। सार्वजनिक नहीं की जाती थी। अधिकारी साधकों को ही बताई जाती थी। जब यह गुप्त विद्या सबको बताई

जाने लगी तो अनर्थ हुआ।” उसी कुष्ठ रोगी ने पूछा कि क्या देवी-देवता पशु या मनुष्य का रक्त पीकर प्रसन्न होते हैं तो आचार्यश्री ने उत्तर दिया “नहीं, देवता तो दूध-नैवेद्य और प्रसाद पाकर भी प्रसन्न नहीं होते। हमारे पास जो श्रेष्ठ और मूल्यवान है, हम उसी को समर्पित करते हैं। भगवान् तो भावनाओं से प्रसन्न होते हैं ”

रामेश्वरम का विग्रह बहुत पुराना है। मंदिर भले ही 350 वर्ष पहले बना हो, भगवान् शिव का अर्चा विग्रह तो काफी पुराना है, जनश्रुतियों के अनुसार त्रेतायुग का यानी हजारों वर्ष पहले का है। मंदिर के पास ही एक बाग पर आचार्यश्री की दृष्टि गई। यह बाग हनुमान मंदिर के पास है। हनुमदीश्वर या विश्वनाथ के पास बने मंदिर के बारे में लोगों का विश्वास है कि हिमालय से लौटकर यहाँ स्थापना के बाद हनुमान जी अपने एक

अंश से यहाँ भी विराज गये थे। उनकी जीवंत और जागृत उपस्थिति यहाँ अनुभव की जा सकती है।

गायत्री के तीन रूप

हनुमान मंदिर के सामने बाग में सावित्री तीर्थ, गायत्री तीर्थ और महालक्ष्मी तीर्थ है। आचार्यश्री इन तीर्थों का अवलोकन करते हुए रामेश्वरम मंदिर की पौड़ी से वापस लौट कर आये। तीर्थों को देखकर उन्होंने कहा, 'ये रामेश्वरम की प्राचीन पुरातनता के प्रमाण हैं। सावित्री और गायत्री को तो एक दूसरे का समानार्थी समझा ही जाता है, महालक्ष्मी उन दोनों का सेतु है। सावित्री अर्थात लौकिक सत्ता और गायत्री अर्थात आत्मिक चेतना, मूल चेतना एक ही है। समझने के लिए उनको अलग-अलग रूपों में बँटा देखते हैं तो वे सावित्री और गायत्री के रूप में समझे जाते हैं। महालक्ष्मी उस एक तत्त्व का ही वैभव पक्ष है।

बहुत से यात्री रामेश्वरम यात्रा में पहले दिन समुद्र स्नान ही करते हैं, कोई यात्रा करता हुआ जा रहा था उसके साथी ने कहा, “हम लोगों के पास इतना समय कहाँ है, पवित्रीकरण, आचमन से ही काम चला लेते हैं । भाग्य में हुआ तो फिर कभी आएंगे और पूरा दिन समुद्र स्नान करेंगे यहाँ के 24 तीर्थ नहाएंगे।” इन 24 तीर्थों के नाम जानने के लिए पाठक इस लिंक को क्लिक कर सकते हैं। T-Series वालों की 44 मिंट की वीडियो भी इस विषय पर बहुत ही दिव्य जानकारी दे सकती है।

उनकी बातचीत में 24 का संदर्भ सुनते ही आचार्यश्री ने ज्वालादत्त को संबोधित किया कि सभी तीर्थ गायत्री की एक-एक शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। भगवान ने इन शक्तियों का आह्वान लंका विजय से पूर्व किया होगा।

चर्चा करते हुए आचार्यश्री और ज्वालादत्त रामेश्वरम या रामनाथलिंगम के दर्शन के लिए चल दिए। ज्यादा भीड़ नहीं थी। जगमोहन के छ्ड़ के घेरे के पास दो छोटे-छोटे मंदिर हैं। एक में गंधमादनेश्वर शिवलिंग है- इसकी स्थापना महर्षि अगस्त्य ने कराई थी। कहते हैं कि यह रामेश्वरम की स्थापना से पहले भी था। दूसरे छोटे मंदिर में अनादिसिद्ध स्वयंभूलिंग है। महर्षि अगस्त्य ने इसकी भी पूजा अर्जना की थी और यह गंधमादनेश्वर से भी पहले विद्यमान था। इसे अगस्त्येश्वर कहते हैं।

आचार्यश्री भगवान शिव के ही कोई विशेष गण हैं

आचार्यश्री ने जिस समय रामेश्वरम के दर्शन किये तब मंदिर में रजत रथोत्सव चल रहा था ।

रामेश्वरम उत्सवधर्मी मंदिर है। प्रतिदिन, हर घड़ी कोई न कोई उत्सव चलता ही रहता है। रजत रथ महोत्सव में रामेश्वरम की उत्सव मूर्ति मंदिर से बाहर निकाली जा रही थी। शिव पार्वती, नंदी, कार्तिकेय और गणेश जी के विग्रह को चांदी के रथ में बिठाकर बाहर निकाला जा रहा था। पत्र पुष्पों से सजे रथ और आभूषणों से सज्जित शिव पार्वती प्रतिमा मनोहारी लग रही थी। आचार्यश्री ने उस यात्रा को कुछ क्षण के लिए निहारा और भीतर चले गये। अभिषेक के लिए मंदिर कार्यालय से गंगाजल पहले ही ले लिया था। शेषनाग के फणों जैसे बने छत्र के नीचे भूतभावन रामेश्वरम की छवि निहारते अभिषेक कराते और भी लोग वहाँ उपस्थित थे। आचार्यश्री ने भी कार्यालय से लिया हुआ गंगाजल आगे बढ़ाया और मंदिर के पुजारियों को सौंप दिया। गंगाजल सौंपते हुए वे ज्योतिर्लिंग को

एकाग्रचित्त होकर देख ही रहे थे कि गर्भगृह से किसी पुजारी ने संकेत किया। आचार्यश्री ने उस संकेत को देखा अनदेखा कर दिया। कोई जान पहचान नहीं थी। इस धाम में पहली बार आना हुआ था। इसलिए भी अपने बुलाये जाने का ख्याल नहीं था। वे चुपचाप खड़े रहे। पुजारी ने कहा, “आप से ही कह रहा हूँ बंधु। खद्दरधारी बंधु ।” दर्शनार्थियों में किसी और ने खादी के वस्त्र नहीं पहने थे। इशारा आचार्यश्री की ओर ही था इसलिए अब बोध हुआ कि उन्हें ही बुलाया जा रहा है,इशारे को समझकर वे आगे गये। पुजारी ने गर्भगृह का द्वार खोल दिया और भीतर आने के लिए इशारा किया। लाया हुआ गंगाजल पुजारी जी ने आचार्यश्री को वापस करते हुए कहा कि वे स्वयं ही अभिषेक करें। यह एक अपवाद(exception) था। पास ही खड़े एक पुजारी ने

अपने साथी की ओर आश्चर्य से देखा। उसकी दृष्टि में आपत्ति का भाव था। उस पुजारी ने कहा,

"यह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है। इसके माथे पर देखो चंद्रमा दिखाई देता है।"

पुजारी ने आचार्यश्री के माथे पर गौर से देखा। लगा कि उसका साथी सही कह रहा है तो पूछा,

"इसका क्या अर्थ है?"

उसी पुजारी ने कहा, "चंद्रमा किस देव के सिर पर है ?"

"महादेव शंकर के," उत्तर था। "लेकिन उनकी जटा में चंद्रमा है। तुम्हारे इस यजमान के तो भृकुटि के मध्य में दिखाई दे रहा है।"

"यह भगवान् शिव का विशेष गण हो सकता है। मैं कोई कारण नहीं बता सकता। लेकिन मुझे रामेश्वरम महादेव

सतत प्रेरणा दे रहे हैं कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है।”

उस पुजारी ने कहा I पास ही खड़े आचार्यश्री यह सब सुन रहे थे। उन्होंने कहा,

“मैं साधारण व्यक्ति ही हूँ महाराज। जो चिह्न आप देख रहे हैं, वह किसी भी व्यक्ति के माथे पर हो सकता है। ध्यान करने वाले साधकों के कपाल पर तो यह सहज ही आ जाता है।”

“ठीक है। ठीक है।“ उस पुजारी ने कहा, 'आप अपने हाथों से ही ज्योतिर्लिंग का अभिषेक कीजिए।'

आचार्यश्री ने तांबे के पात्र में भरा गंगाजल रामेश्वरम पर चढ़ाना आरंभ किया। तैलधारा की तरह जल प्रवाहित हो रहा था। किसी भी पल में क्षीण या स्थूल नहीं हो पाया था। उनका ध्यान ज्योतिर्लिंग पर केन्द्रित था । दृष्टि वहीं टिकी हुई थी। तैलधारा की तरह

अनवरत बह रहे जल को देखते-देखते आचार्यश्री के मानस पटल पर एक दृश्य उभरने लगा।

गुरुदेव का ध्यान में मग्न होना

समय का कोई पता ही नहीं चल रहा है। आसपास कैसा वातावरण है, उसका भी कोई बोध नहीं रहा। देश और काल का अतिक्रमण करते हुए कुछ अनुभव हो रहा है। जंगल का दृश्य उभर रहा है, जंगल बहुत घना नहीं है, अत्यंत विरल भी नहीं है। उस जंगल में समुद्र की तरंगों की आवाजें आ रही थीं। लहरों की गूंज का स्वर ऊंचा नहीं था। लहरें बहुत शांत संगीत की सी ध्वनि करती उठ रहीं थीं। सामने ही ज्योतिर्लिंग है। वहाँ मंदिर या छत जैसी कोई रचना नहीं थी। आचार्यश्री अपने आपको विग्रह के पास खड़ा देख रहे हैं। जिस रूप में अभी हैं, उससे भिन्न। चेहरे पर घनी दाढ़ी मूछें हैं, सिर पर जटाएं और वेश भी संन्यासी का। गेरुआ वस्त्र पहने वे

शिव की आराधना कर रहे हैं। देखते ही देखते दिन बीत जाता है। कई दिन बीत गये। हफ्तों और महीनों बीत गये। सेवा करते-करते उस संन्यासी के मन में वहां एक कुटिया बनाने का विचार आता है। वह कुटिया बनाने लगते हैं। ज्योतिर्लिंग पर छाया के लिए बनी छोटी सी कुटिया के बाद एक झोपड़ी बनाई। उसमें यही संन्यासी ध्यान करते और ज्योतिर्लिंग के दर्शन के लिए आने जाने वालों को उपदेश देते दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे वहाँ 8-10 साधक इकट्ठे हो गये हैं। निवास करने लगे हैं और संन्यासी के सान्निध्य में साधना करने लगते हैं।

गुरुदेव का ध्यान से बाहिर आना

आचार्यश्री उस दृश्य से तब बाहिर निकले जब उसी पुजारी की आवाज़ सुनाई दी "अभिषेक संपन्न हुआ महात्मन। " संन्यासी के साथ तादात्म्य इतना जुड़ गया था कि उन्हें अपने आप में लौटने में कुछ समय लगा।

अभिषेक के बाद प्रसाद आदि लेकर वे वापस लौटे। उनके मन में रामेश्वरम का इतिहास जानने की इच्छा प्रबल हो उठी थी। वे मंदिर के कार्यालय में जाने, पुस्तकालय खंगालने या अधिकारी विद्वानों से मिलने के बारे में विचार करने लगे। इस संकल्प विकल्प के साथ वे मंदिर की परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा मार्ग के दांई ओर पर्वतवाहिनी का मंदिर है। यहां पार्वती की भव्य प्रतिमा स्थित है। पर्वतवाहिनी पार्वती का ही दूसरा नाम है मंदिर के पास ही एक शयन मंदिर है। निशीथ आरती के बाद भगवान रामेश्वरम की उत्सव मूर्ति यहाँ लाई जाती है। आचार्यश्री जब इस मंदिर में दर्शन कर रहे थे तो वहाँ के अर्चक से अनायास ही चर्चा चल पड़ी। मंदिर के प्रारंभिक इतिहास के बारे में पूछा। उसने बताया कि शास्त्रों में रामेश्वरम ज्योतिर्लिंग के वन में ही मिलने का उल्लेख आता है। वह खुले आकाश के नीचे

स्थित था। किसी संत ने वहाँ सबसे पहले छाया की। उसके दसियों या सैकड़ों साल बाद राजाओं, नरेशों ने मंदिर बनवाया। कालांतर में वह मंदिर विस्तार लेता गया।

रामझरोखा में आहुतियां- राघवदास जी का यज्ञ में योगदान

रामेश्वरम का यज्ञ तैयारियों और व्यवस्थाओं की दृष्टि से समग्र था।आचार्यश्री के अभिषेक करने के बाद और लोग भी ज्वालादत्त के साथ आ गये थे। रामझरोखा से आए एक वैष्णव साधु राघवदास भी इन लोगों में ही थे। राघवदास बल के उपासक थे- उनके आराध्य हनुमान थे। उनके गाये भजनों में हनुमान को कई बार राम से भी श्रेष्ठ निरूपित किया जाता था। दुनिया भगवान राम के बिना नहीं चलती और राम को

अगर कोई पहल करना हो तो वे हनुमान को ही आगे करते हैं । रामेश्वरम मंदिर के कुछ पुरोहित साधु राघवदास की आलोचना करते थे। साधु बाबा को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था । इन्हीं राघवदास का मानना था कि गायत्री हनुमान जी की प्रथम आराध्य थी। उन्हीं के अनुग्रह से हनुमान जी को अपने इष्ट राम का पता चला था।

जब राघवदास जी को पता चला कि रामेश्वरम में गायत्री महायज्ञ की योजना बन रही है तो वे आगे आये। उन्होंने कहा कि राम का बोध कराने वाली गायत्री का अग्निहोत्र आराधन हमारे ही स्थान पर होना चाहिए। जिस जगह यज्ञ हो रहा था वह रामझरोखा कहा जाता है। रामझरोखा हनुमान जी का स्थान माना जाता है। पुराणों के अनुसार कलियुग से पहले यहां एक विशाल पर्वत था जिसका नाम गंधमादन था । पुराण प्रसिद्ध

इस पर्वत पर देवता निवास करते थे। महर्षि अगस्त्य ने यहीं अपना आश्रम बनाया हुआ था।

पौराणिक उल्लेखों के अनुसार कलियुग शुरू हुआ तो गंधमादन पर्वत पाताल में चला गया। प्रकृति वैज्ञानिकों के अनुसार किसी जमाने में यहाँ भूकंप आया और पर्वत छिन्न-भिन्न हो गया। इस क्षेत्र में आये भौगौलिक परिवर्तन के कारण सिर्फ टीला ही रह गया।

रामायण और अन्य रामकथाओं में इसी पर्वत पर राम की सेनाओं के इकट्ठे होने का उल्लेख है। अब तो उस जगह एक मामूली टीला है। उस पर ऊपर तक जाने की सीढ़ियां बनी हैं। मंदिर में भगवान के चरण चिह्न हैं। कहते हैं कि इसी टीले पर चढ़ कर हनुमान जी ने लंका की दूरी का अनुमान लगाया था। लंका आक्रमण के समय भगवान ने यहीं बैठकर अपने सेनापतियों से लंका पर आक्रमण की योजना बनाई थी।

साधु राघवदास के पास 8-10 शिष्यों का अच्छा समूह था । रामझरोखे में यज्ञ का निर्धारण होने के बाद वह पूरी टीम काम में लग गई। रामेश्वरम के और साधक पहले से ही काम कर रहे थे। मिले जुले प्रयत्नों से *गायत्री महायज्ञ संपन्न हो गया।* तीन दिन के कार्यक्रम में दो ढाई हजार लोगों की संख्या ज्यादा नहीं होती। संख्या तो कम ही थी लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि

रामेश्वरम के स्कालर अपनी तरह से अलग ही ढंग का और आक्रामक सा विरोध कर रहे थे। स्त्रियों और शूद्रों को गायत्री का अधिकार देने, मंत्र का ज़ोर से उच्चारण करने और स्थानीय पंडितों को यज्ञ में नहीं बुलाने जैसे मुद्दे भी शामिल थे। इन बातों का यथोचित समाधान कर भी दिया गया लेकिन पंडितों ने इस बात पर बवाल मचाया कि हमने तो मर्यादा पुरषोतम राम को भी आरोपों के घेरे में खड़ा करने वाला बता दिया था। यह आरोप लंका विजय के बाद भगवान के वापस आने और ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित करने की व्यवस्था को लेकर था जो उस समय के आचार्यों ने ही दी थी।

आचार्यश्री ने अपनी ओर से लाख सफाई दी कि वह टिप्पणी वर्तमान आचार्यों को लेकर नहीं थी बल्कि उस समय के शास्त्रीय उल्लेखों में ही वर्णित थी लेकिन

पंडितों ने इस तर्क को नहीं माना। वे कह रहे थे कि आचार्यश्री अपनी बात के लिए अफसोस जताएं तभी कोई रास्ता निकल सकता है वरना वे महायज्ञ में बाधा उत्पन्न करेंगे।

इन संवादों का जिक्र होने पर साधु राघवदास ने चुटकी ली, उन्होंने कहा कि उस ज़माने में भी यहाँ के पंडितों ने एक धर्मसम्मत काम को पाप बताया था।आज भी एक ऊटपटांग बहाना बनाकर पंडित लोग यज्ञ का विरोध कर रहे हैं। आचरण तो उनका वही है। कहते-कहते बाबा राघवदास आवेश में आ गये। उन्होंने आचार्यश्री से कहा, “आप परवाह मत कीजिए। ये लोग यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करेंगे तो हमारी सेना उन्हें देख लेगी। हनुमान बाबा के यह सेवक किस दिन काम आएंगे।” आचार्यश्री ने कहा कि हमें किसी से झगड़ा नहीं करना है। बातचीत से ही समाधान निकल आए तो

अच्छा है लेकिन पंडित तो सुन ही नहीं रहे थे। उन्हें लगा कि दबाव काम कर रहा है तो उन्होंने एक और सन्देश भिजवाया। इस सन्देश में यह शर्त जोड़ दी कि यज्ञ का संचालन भी हमें ही सौंपा जाए। जिस तरह हम लोग कहें, उसी के अनुसार व्यवस्था की जाए। आचार्यश्री को लगा कि रोष से समाधान नहीं होने वाला। स्थानीय पंडित पूरे आयोजन पर ही अधिकार करना चाहते हैं, यूँ कहें कि उसे अपने निहित स्वार्थ के लिए उपयोग करना चाहते हैं। आचार्यश्री ने सन्देश का उत्तर भिजवाया कि अब कोई समझौता नहीं होगा। पंडितों ने धमकी दी कि वे यज्ञ का सक्रिय विरोध करेंगे। साधु राघवदास के शिष्यों ने अपनी तैयारी की खबर भिजवा दी । यह संकेत कर दिया कि किसी तरह का उपद्रव किया तो उसका प्रतिकार होगा। पंडितों के पास मुकाबला करने की सामर्थ्य नहीं थी। उन्हें राघवदास के

चेलों के बारे में अच्छी तरह मालूम था कि मुकाबला हुआ तो पंडितगण हारेंगे ही। उन्होंने दूसरा रास्ता अपनाया। यज्ञस्थल के बाहर सत्याग्रह की धमकी दी और कहा कि जितने दिन यज्ञ चलेगा उतने दिन तक आयोजन स्थल के बाहर धरना देकर बैठेंगे। कहे अनुसार वे लोग धरना देकर बैठे भी उस समय साधु राघवदास ने एक विचित्र समाधान निकाला। धरना देने के समय तक उन्होंने कोई पहल नहीं की। विरोध करने वालों ने अपना शामियाना लगा लिया था। शामियाना के नीचे विष्णु स्वरूप शर्मा, बोधलिंगम, रामस्वामी शास्त्री और गौरांगप्रभु ने उपवास शुरु किया। जहाँ ये लोग बैठे थे उसके पीछे बैनर पर लिखा हुआ था, “शास्त्र विरुद्ध और धर्मविरुद्ध महायज्ञ के आयोजन के विरोध में।”

विरोध के विरोध में

पंडितजनों ने विरोध शुरू किया ही था कि साधु राघवदास के शिष्य आ गये। उन्होंने हाथों में पोस्टर

थाम रखे थे। उन पर लिखा था “कुछ विद्वानों द्वारा महायज्ञ में विघ्न उपस्थित करने के विरोध में, साथ ही यह अनुरोध भी किया था वे आयोजन में शामिल हों।” यज्ञ में आने वाले लोग दोनों खेमों में जा रहे थे । राघवदास के खेमें में बैठे लोग सिर्फ यही अनुरोध कर रहे थे कि भगवान का नाम जहाँ भी लिया जा रहा हो धर्मप्रेमियों को उसमें भाग लेना चाहिए। सामने बैठे पंडितजन महायज्ञ में चलें या उसके दोष बताए। दोष बताना है तो उसके लिए भी वहां तो जाना ही पड़ेगा। जो भी गलती होगी हम सुधार लेंगे। वे चलें तो सही। राघवदास के खेमें में गये लोग अंधविरोध कर रहे पंडितों तक संदेश पहुँचाने लगे। शुरू में तो लोगों ने संदेश पहुँचाने तक ही सीमित रखा। दोपहर बाद यज्ञ में चलने के लिए अनुरोध सा करने लगे। कोई असर नहीं हुआ तो दबाव भी बनाने लगे। अगले दिन लोगों ने

इतना ज्यादा कहा सुना कि दोपहर होने तक विरोध जता रहे पंडित अपना तंबू समेट कर चलते बने। "जिस जगह गायत्री मंत्र के खुल कर उच्चारण करने का विरोध हो रहा था वहाँ 32 लोगों ने दीक्षा ली।" आचार्यश्री का मानना था कि दीक्षा मंत्र एक ही है। आरंभ से गायत्री मंत्र का ही उपदेश दिया जाता रहा। इसलिए गायत्री मंत्र को गुरुमंत्र भी कहते हैं। दूसरे संप्रदायों या साधना-परंपराओं ने अपने-अपने मंत्र देना आरंभ किया लेकिन गायत्री मंत्र की उपासना फिर भी सभी धाराओं में जारी रही। उपनयन या यज्ञोपवीत के समय आचार्य गायत्री मंत्र की ही दीक्षा देता है। आचार्यश्री ने यज्ञ में इस बात को कई उदाहरणों और प्रमाणों से समझाया।

आयोजन तीन दिन चला। तीनों दिन रामेश्वरम के स्थानीय लोग आये । तीर्थयात्री भी आये लेकिन यज्ञ की असल भागीदारी तो स्थानीय लोगों की ही रही।

कई तो ऐसे थे जिनका उपनयन संस्कार यथासमय हो गया था लेकिन उन्होंने गायत्री मंत्र की दीक्षा के उद्देश्य से एक बार फिर संस्कार कराया। उस दिन महायज्ञ की पूर्णाहुति थी। आहुतियां पूरी हो चुकी थी। कर्मकाण्ड भी संपन्न हो गयाथा । स्वयंसेवक यज्ञशाला में बिखरा हुआ सामान समेटने में लगे थे। इन सब बातों से निवृत हुए से आचार्यश्री अपने आसन पर बैठे थे। वे समूह की ओर निहार रहे थे।

गुरुदेव की विचित्र अनुभूति

बैठे-बैठे उन्हें विचित्र अनुभूति हुई। अनुभूति के अलावा शास्त्रों में पढ़े हुए प्रसंग की अनुस्मृति भी कह सकते हैं। लगा कि भगवान राम अपनी जीती हुई सेना के साथ वापस लौट रहे हैं। यह बोध भी बराबर बना हुआ है कि भगवान राम, लक्ष्मण और सीता सहित हनुमान आदि पुष्पक विमान से वापस लौटे थे। लेकिन मन ही तो था

अपनेआप दृश्यों का संयोजन कर रहा था। वानर सेनानायकों और सैनिकों की वापसी हो रही थी, प्रभु राम अपने दरबार (लक्ष्मण, सीता और हनुमान) सहित गंधमादन पर्वत पर आये हुए हैं। वे महायज्ञ के बारे में जिज्ञासा कर रहे हैं। आचार्यश्री उन जिज्ञासाओं के उत्तर दे रहे हैं। भावबोध की यह स्थिति देर तक बनी रहती है। फिर मन में एक प्रेरणा उभर रही है। प्रेरणा कहें या विश्वास कि अभी मंजिल बहुत दूर है। प्रभु राम को भी आसुरी आतंक समाप्त करने के लिए 14 वर्ष लगे थे। इस बीच उन्हें कितनी ही आपदाओं विपदाओं का सामना करना पड़ा था। इन विचारों या भावों को उठते उतरते देख आचार्यश्री देर तक बैठे रहे।

आचार्यश्री ने साधु राघवदास को ज़िम्मेदारी सौंपी

ज्वालादत्त ने पास आकर कहा कि गुरुदेव यहाँ का काम सिमट चुका है अब हम वापस रामेश्वरम चलें ? दोनों

में यह वार्त्तालाप चल रहा था कि साधु राघवदास भी वहां आ गये। कागजों का एक बड़ा पुलिंदा वे हाथ में लिए हुए थे। उन्होंने कहा कि ये संकल्प पत्र हैं। यज्ञ में आने वालों ने इनमें अपनी भावनाएँ लिखी हैं। आचार्यश्री ने पूछा, “इन्हें पढ़ कर देखा है लोगों ने किस तरह की बातें कही हैं।” राघवदास ने कहा, “सारे पत्र तो नहीं देखे। कुछ ही पढ़े हैं। लोगों ने अपनी तकलीफें लिखी हैं। मनौती मानी है। कुछ ने अपने यहाँ भी इस तरह के कार्यक्रम रखने की इच्छा जताई है।” आचार्यश्री ने कहा, “हमारे जाने के बाद आप यहां गायत्री के प्रचार का काम देखते रहें। कोई कठिनाई हो और स्वयं उसका निराकरण नहीं कर सकें तो बताइएगा।” साधु राघवदास ने अपना दांया हाथ आगे बढ़ाया। यह संकेत कलावा बांधने के लिए था। इस बात का सूचक कि जो दायित्व सौंपा गया है, उसे पूरा करने के लिए स्वयं को

वचनबद्ध कर लिया है। यह जिम्मेदारी ओढ़ता हूँ और पूरी करूंगा। आचार्यश्री ने राघवदास के हाथों में कलावा बांधा और माथे पर तिलक लगाया। साधु राघवदास आचार्यश्री को प्रणाम करने के लिए झुके। आचार्यश्री उस समय ज्वालादत्त की ओर देख रहे थे। उनके चेहरे पर असंतोष के भाव दिखाई दे रहे थे। उन्हें राघवदास को यह जिम्मेदारी सौंपने पर जैसे शिकायत सी थी। आचार्यश्री ने उनके भावों को ताड़ा और कहा कि आपको मथुरा आना हैऔर वहां आकर बड़ी जिम्मेदारी संभालनी है।